4

बाल साहित्य के झरोखे से

उषा शर्मा*

बाल साहित्य एक ऐसी पूँजी है जो बच्चों के संसार को अनेक तरह से समृद्ध करती है। बच्चे स्वयं भी कविता, कहानी बनाते हुए अपनी रचनात्मकता को संतुष्ट करते हैं। इस प्रकार बाल-काव्य की रचना बचपन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जिसके ज़रिये बच्चे अपने परिवेश की पहचान करते हैं, उस पर अपनी प्रतिक्रिया करते हैं और अपना मनोरंजन करते हैं। बाल-काव्य का सहज, सरल भाव, संगीतात्मकता, छंदमयता, खेलभाव और आनंददायक मज़ेदार ध्वनियों की कल्पनाशील उड़ान हमें बरबस ही अपनी ओर आकर्षित करती है। चित्रात्मकता, रोचकता और बच्चों की दुनिया से जुड़ा बाल साहित्य बच्चों को बरबस ही अपनी ओर खींचता है। बाल साहित्य अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न अवधारणाओं, मूल्यों और भाषा-विकास को भी पोषित करता है।

बच्चों की दुनिया में दाखिल होने का अनुभव बेहद ख़ास होता है। ख़ास इस मायने में कि उनकी दुनिया में कोई चीज़ क्या रूप लेगी - कहा नहीं जा सकता। ख़ास इस मायने में भी कि कौन-सी चीज़ उनके चेहरे पर कब मुस्कान ले आए, उन्हें कब गुदगुदा जाए- पता नहीं। बच्चों की दुनिया में सब कुछ इतना चमत्कारिक होता है कि आप अनुमान ही लगाते रह जाएँगे।

विकास की दृष्टि से विद्यालय-पूर्व स्तर के बच्चे अपने प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा सर्वाधिक सीखते हैं।

लाडो सराय स्थित आँगनबाड़ी में छोटे बच्चों के साथ काम करते हुए यह जानने का अवसर मिला कि रंगीन चीज़ें उनके आकर्षण का केंद्र होती हैं। अगर रंगीन तस्वीरें बड़ी हों तो आकर्षण दुगना हो जाता है। इसका प्रमुख कारण संभवतः यह हो सकता है कि बड़े आकार की तस्वीर में वे सभी चीज़ों पर सरलता से गौर कर सकते हैं या बड़े आकार की रंगीन तस्वीरें पूरी तरह खुलकर स्वयं को अभिव्यक्त करती हैं। कहीं कोई दुराव-छिपाव नहीं होता। हर बारीक चीज़ को पैनी नज़र से देखना संभव होता है। अवधारणाएँ बनने में नज़र का यही पैनापन काम आता है। किताबों में आई उन तस्वीरों को देखकर वे ज़्यादा खुश होते हैं जो पहले से ही उनके आस-पास मौजूद

* *एसोसिएट प्रोफ़ेसर,* प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली -110016

होती हैं। उन चीज़ों को किताब में कैद होता देख वे आश्चर्यचकित हो जाते हैं। तब उनकी अभिव्यक्ति कुछ इस तरह होती है - ''अरे! यह तो गेंद है। मेरे पापा भी मेरे लिए गेंद लाए थे।'' किसी चीज़ को देखकर उसे पहचानना, नाम देना और फिर उसे अपने पूर्व अनुभवों, निकटीय परिवेश से जोड़ने की यह प्रक्रिया पूर्व प्राथमिक स्तर के बच्चों की पहचान है। यह भी ठीक है कि इस स्तर के बच्चों को अक्षर बोध नहीं होता, जिसकी वजह से वे पाठ्य-सामग्री (शब्द, वाक्य) नहीं पढ़ पाते। शब्दों, वाक्यों से बँधी भाषा जो करना चाहती है, उसे चित्रों की भाषा और भी अधिक सृजनात्मक तरीके से कहने की सामर्थ्य रखती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि शब्द और वाक्य कथ्य को अपनी अर्थगत परिधि से बाँध देते हैं, लेकिन चित्रों की भाषा के साथ ऐसा नहीं होता।

चित्रों की भाषा ऐसी स्वच्छंदता, उन्मुक्तता प्रदान करती है कि 'पढ़ने' वाला अपने कथ्य को स्वयं गढ़ता है। जहाँ बंधन न हो वहीं स्वच्छंदता और सृजनात्मकता अपना साम्राज्य स्थापित करते हैं। इसलिए चित्रात्मक किताबें बच्चों के लिए हमेशा आकर्षण का केंद्र रही हैं। आँगनबाड़ी के बच्चों के साथ यह अनुभव भी रहा कि रंगीन चित्रात्मक किताबों को देखते ही बच्चों के भीतर उसे छूने, पकड़ने और उसके भीतर की दुनिया में झाँकने के लिए पन्ने-दर-पन्ने पलटने की उत्कट इच्छा बच्चों को सक्रिय बना देती है। पढ़ना शुरू करने की प्रक्रिया का पहला सोपान यही है कि हम किताबों के प्रति आकर्षण महसूस करें और खोलकर देखने की तीव्र इच्छा भी। एक बार किताब खुलते ही उसमें मौजूद अवधारणाओं का संसार भी धीरे-धीरे खुलने लगता है। दरअसल, बच्चों की प्रतिक्रिया ही इन अवधारणाओं के बनने का प्रमाण है। जब वे चीज़ों की पहचान कर उन्हें नाम देते हैं तो स्वत: स्पष्ट हो जाता है कि उनके मस्तिष्क में अवधारणाएँ मौजूद हैं। अधूरी अथवा गलत अवधारणाएँ भी चित्रों और चित्रों पर बातचीत करने के माध्यम से संशोधित, परिवर्तित होती चलती हैं। एक बात और जो इन अवधारणाओं के संदर्भ में महत्वपूर्ण है, वह है - संदर्भयुक्त परिवेश में अवधारणाओं का बनना।

पूर्व प्राथमिक स्तर के बच्चों के विभिन्न आयामों शारीरिक, मानसिक, भाषिक, समाज-संवेगात्मक आदि का विकास करने के लिए अकसर शिशु गीतों, कविताओं, चित्रात्मक कहानियों का सहारा लिया जाता है। **इस स्तर के बच्चों का यह साहित्य अर्थात् बाल साहित्य इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि वह अपने भीतर बच्चे के पूर्वोक्त आयामों के विकास की संभावनाओं को समेटे हुए है। रंगीन चित्र सदा से ही बच्चों के आकर्षण का केंद्र रहे हैं। गीतों की लयात्मकता, बाल-छंद, ताल, संगीत का माधुर्य भी उन्हें सम्मोहित करता है। कहानियों का जादू तो सिर चढ़कर बोलता है।** अत: ज़रूरी है कि पूर्व प्राथमिक स्तर के बच्चों के लिए सावधानीपूर्वक बाल साहित्य का चयन किया जाए और उन्हें बच्चों को उपलब्ध कराया जाए।

हम सभी ने अपने बचपन में कभी न कभी कुछ पंक्तियों की रचना ज़रूर की होगी। फिर ये पंक्तियाँ चाहे किसी को चिढ़ाने के लिए कही गई हों या किसी कविता को विस्तार देने की कारस्तानी हो। हम जानते ही हैं कि खेल-खेल में बाल-काव्य की रचना बचपन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जिसके ज़रिये बच्चे अपने परिवेश की पहचान करते हैं, उस पर अपनी प्रतिक्रिया करते हैं और अपना मनोरंजन करते हैं। बाल-काव्य का सहज, सरल भाव, संगीतात्मकता, छंदमयता, खेलभाव और आनंददायक मज़ेदार ध्वनियों की कल्पनाशील उड़ान हमें बरबस ही अपनी ओर आकर्षित करती है। कई बाल-काव्यों में हमें गाँव के जीवन की झलकियाँ देखने को मिलती हैं, जैसे -

'चक्की चलाई मैंने धनिया बोया
हाँ सखी री धनिया बोया।
धनिये में दो किल्लन फूटे
हाँ सखी दो किल्लन फूटे।
किल्लन मैंने गऊ चराई.....'

'चल चमेली बाग में
मेवे खिलाएँगे।
मेवों की टहनी टूट गई
चादर बिछाएँगे।
चादर का कोना फट गया
दर्जी बुलाएँगे...'
'चल चमेली बाग में
मेवे खिलाएँगे।
मेवों की टहनी टूट गई
चादर बिछाएँगे।
चादर का कोना फट गया
दर्जी बुलाएँगे...'

गाँव की बोलियों का प्रयोग यहाँ बहुत स्पष्ट है। इसी तरह से बाल-काव्य में अलग-अलग संस्कृतियों की भी झलकियाँ मिलती है -

'लाहौल, विलाकुव्वत, मिन कुल्ले सपाटा,
कल रात को मच्छर ने बड़े ज़ोर से काटा।'

बाल-काव्य तो एक लोक परंपरा है। कविताओं में परिवर्तन खुद बच्चे लाते हैं, चूँकि इस तरह का प्रचलित बाल-काव्य लिखित रूप में उपलब्ध नहीं है इसलिए इसमें समय के साथ और नयी ज़रूरतों के चलते बच्चों द्वारा ही परिवर्तन और परिवर्धन किया जाता है जो इसे प्रकारांतर से विकसित और समृद्ध करता है। लोक परंपरा में परिवर्तन एक क्रमिक प्रक्रिया है और बच्चों का सामूहिक योगदान एक साधन है। उदाहरण के लिए **'अक्कड़ बक्कड़'** कविता को ही लीजिए। कहीं तो आपको मिलेगा -

'सौ में लगा धागा
चोर निकलकर भागा'

तो कहीं इसका स्वरूप है-

'सौ गलोटा तीतर मोटा
चल मदारी पैसा खोटा'

नहीं तो **'चोर निकल के भागा'** के बाद कई स्थानों पर प्रचलित है -

'रानी की बेटी सोती थी
स्वप्न नगर में रहती थी'

और कई जगहों पर इसमें नया पद जुड़ जाता है -

'रेल आई छम-छम
आलू कूटा धम-धम'

इस तरह अलग-अलग मिलने वाले इन पदों में सामूहिकता का पुट है और इस प्रक्रिया में किसी का भी योगदान हो सकता है। यह योगदान कब, किस तरह हुआ इसके बारे में बताना संभव नहीं। अगर किसी नयी कविता का सृजन होता है तो उसके स्थायित्व का दारोमदार बच्चों की उसके प्रति सहमति पर ही निर्भर करता है।

बाल साहित्य का प्रकाशन करने वाली कुछ प्रमुख संस्थाएँ इस प्रकार हैं, जो एक लंबे अरसे से इस महत्ती यज्ञ की ज्योति को प्रज्वलित किए हुए हैं - चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट, नेशनल बुक ट्रस्ट, एकलव्य, कथा, तूलिका, प्रकाशन विभाग, स्कॉलास्टिक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् आदि।

समय के साथ-साथ और समय की माँग को देखते हुए बाल साहित्य की विषय-वस्तु में परिवर्तन आया है। कोरी उपदेशात्मकता की परिपाटी से हटते हुए बच्चों के बहुत ही निजी संसार को किताबों में जगह दी गई है। शिक्षा के बदलते परिप्रेक्ष्य और बदलती ज़रूरतों को संबोधित करते हुए बाल साहित्य का स्वरूप भी शिक्षा के समावेशी रूप की तरह सभी तरह के बच्चों का ध्यान रखने लगा है। नेशनल बुक ट्रस्ट ने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है। वे बच्चे जिनके पास दृष्टि नहीं है अथवा क्षीण दृष्टि हैं, वे भी बाल साहित्य की दुनिया का आनंद ले सकें - इस चिंतन को प्रश्रय देते हुए नेशनल बुक ट्रस्ट ने 'तीन मछलियाँ' शीर्षक कहानी को स्पर्श संवेदी बनाया है, हालाँकि यह किताब अन्य बच्चों के लिए भी उपयोगी है, लेकिन दृष्टिहीन बच्चे भी इससे लाभ उठा सकते हैं।

'तीन मछलियाँ' में तीन मछलियों की अलग-अलग अनुभूति करवाने के लिए उन्हें अलग 'टेक्स्चर' दिया गया है। हाँ, आकार में तो अंतर है ही। इतना ही नहीं पानी, समुद्र का स्पर्श संवेदी अनुभव देने के लिए उच्च कोटि का सेलोफ़िन पेपर इस्तेमाल किया गया है। इसी तरह से एक और किताब ट्रस्ट ने प्रकाशित की है -

'लाली और काली'। ऐसा चिंतन और ईमानदारी भरा क्रियान्वयन आज के दौर में बेहद ज़रूरी है। अन्य प्रकार से अन्य शारीरिक चुनौतियों वाले बच्चों के लिए इस दिशा में और अधिक चिंतन की आवश्यकता है। वे बच्चे जो किसी कारणवश सुन नहीं सकते अथवा बोल नहीं सकते, उनके लिए भी बाल साहित्य उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

चित्रात्मकता की चर्चा के बिना बाल साहित्य की चर्चा अधूरी और बेमानी लगती है। वास्तव में चित्र अपने आप में ही एक

भाषा हैं। चित्र बच्चों के मानस पटल पर गहरे स्मृति चिह्न छोड़ते हैं जो काफ़ी लंबे समय तक उनके मस्तिष्क में बने रहते हैं। अत: न सिर्फ़ अवधारणाओं के स्पष्टीकरण में बल्कि भाषा के शिक्षण में भी ये चित्र भरपूर मदद करते हैं। चित्र बच्चों के लिए सीखने का विस्तृत कैनवास तैयार करते हैं। **बच्चों को न केवल चित्र देखना अच्छा लगता है, बल्कि चित्रों से बातें करना, चित्रों के बारे में बातें करना और चित्र बनाना भी उन्हें खूब अच्छा लगता**

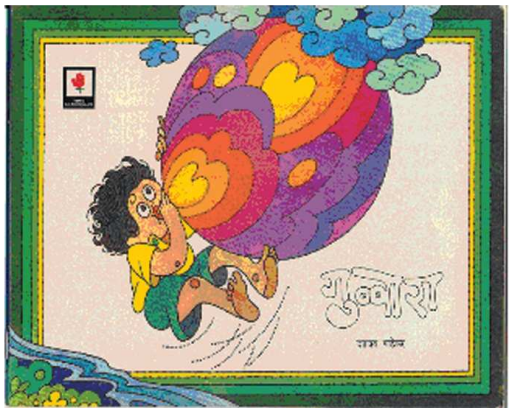

है। चित्र वस्तु और रंगों की पहचान कराने में भी सहायक होते हैं। चीन की भाषा मंदाकिनी की लिपि तो चित्रलिपि ही है। भाषा या कोई भी विषय हो, चित्र चाहे किसी भी रूप में हो रेखाचित्र, आरेख, डायग्राम या ग्राफ किसी भी स्तर पर संदर्भ को समझने में बहुत सहायक होते हैं। यदि यह कहें कि चित्रों के अभाव में किसी भी विषय को सुगमता से नहीं समझा जा सकता तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इतना ही नहीं चित्र की सहायता से शिक्षिका बच्चों में अनुमान लगाने का कौशल भी विकसित कर सकती है।

चित्रों की इसी महत्ता को देखते हुए ऐसा बाल साहित्य प्रकाशित किया जा रहा है जिसमें सिर्फ़ और सिर्फ़ चित्र हैं, चित्र ही भाषा हैं तथा चित्रों की आवाज़ सुनी जा सकती है। नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तकें **'आधे गोल चक्कर', 'गुब्बारा', 'आम की कहानी', 'पशु-पक्षी का नाम बताएँ'** ऐसी ही चित्रात्मक पुस्तकें हैं। इनमें चित्र ही कथा कहते चलते हैं।

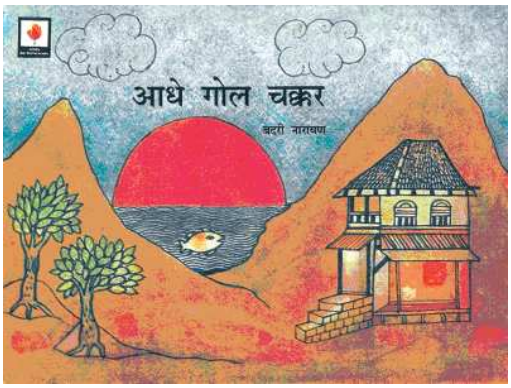

ट्रस्ट ने और भी ऐसी ही पुस्तकें प्रकाशित की हैं - **'चिड़ियाघर की सैर', 'घर और घर' आदि।** ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित **'गुब्बारा'** शीर्षक पुस्तक में एक शब्द भी नहीं है, लेकिन उसमें कथानक की दृष्टि से कहीं भी झोल नहीं है। हर चित्र अपनी बात कहने में सक्षम है। चित्रों की चुस्तबयानी देखने लायक है।

इसी तरह **'आम की कहानी'** में भी आम के हाथ से निकल जाने से लेकर उसके हाथ में आ जाने तक की कहानी को बेहद रोचक और सुंदर अंदाज़ में प्रस्तुत किया गया है। दरअसल, जब बच्चे चित्र कथाओं के पन्नों से एक-एक करके गुज़रते हैं तो एक कहानी

उनके मस्तिष्क में जन्म ले लेती है। पन्नों के पलटने के साथ उस 'मानसिक कहानी' का भी विकास होता चलता है। फिर भाषा हो या न हो–बच्चों को कोई फ़र्क नहीं पड़ता। बच्चे चित्रों के सहारे अनुमान लगाने की क्षमता का भी संवर्द्धन करते हैं।

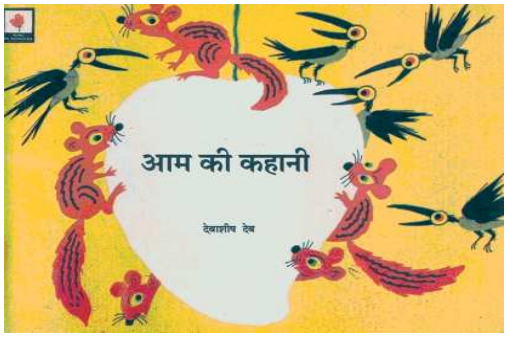

चित्र रूपी बीज से जो काल्पनिक कथा रूपी पेड़ बनता है उसका खाद, पानी, रोशनी सभी कुछ चित्र ही हैं। चित्र अपने आप में कहानी कहने में सक्षम हैं। इन चित्रों के सहारे न केवल भाषा का मज़बूत किला खड़ा किया जा सकता है, बल्कि अवधारणाओं की पुख्ता नींव भी रखी जा सकती है। भाषा और संप्रत्यय साथ–साथ ही विकसित होते चलते हैं। नेशनल बुक ट्रस्ट, एकलव्य, स्कॉलास्टिक ने कुछ ऐसे बाल साहित्य का भी प्रकाशन किया है जो चित्र प्रधान तो है ही, लेकिन उनमें एक–दो वाक्यों से चित्रों को पुष्ट किया गया है। कथ्य और अभिव्यक्ति के स्तर पर सरल और गुँथे हुए वाक्य कहीं भी किसी प्रकार का अवरोध पैदा नहीं करते । इनसे भाषा–संवर्द्धन में ही सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए –

- ज़ेबरा जाग गया (हाथी की हिचकी)
- फिर एकदम से फट गया (गुब्बारे)
- 'मुझे भी', चूजा बोला। (मैं भी.....)
- एक था लाल (पत्ते ही पत्ते)
- लालू दु:खी हो उठा। (लाल पतंग और लालू)
- मुझको धरती प्यारी लगती है। (कितनी प्यारी है यह दुनिया)
- बिल्ली के तीन बच्चे थे। (बिल्ली के बच्चे)
- अम्मा जागी भोर भई। (भोर भई)

इन वाक्यों पर गौर करें तो कहा जा सकता है कि शब्दों का चयन, वाक्यों का चयन बच्चों के स्तरानुसार है। नि:सन्देह पूर्व प्राथमिक बच्चे इन्हें न भी पढ़ पाएँ, लेकिन उन्हें यह अहसास ज़रूर होगा कि जो तस्वीरें ऊपर दिखायी गई हैं, ये नीचे वाली/ऊपर वाली एक पंक्ति में आई तस्वीरें (शब्द, वाक्य) उन्हीं से जुड़ी हुई हैं। फिर बच्चे अनुमान लगाना प्रारंभ करते हैं। सही अनुमान उन्हें पढ़ने, देखने के लिए प्रेरित करता है।

भाषा की दृष्टि से विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रकाशित और अध्ययन में शामिल बाल साहित्य बच्चों के शब्द भंडार में वृद्धि करता है। समग्र रूप से इन शब्दों की अनेक संदर्भों में अनेक कोटियाँ बन सकती हैं। उदाहरण के लिए, बच्चे की दृष्टि से परिचित/अपरिचित, स्थानीयता की दृष्टि से आँचलिक/ स्थानीय/शहरी, प्रयोग की दृष्टि से सक्रिय/निष्क्रिय और शब्द–भेद की दृष्टि से संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया–विशेषण, परसर्ग आदि अनेक तरह

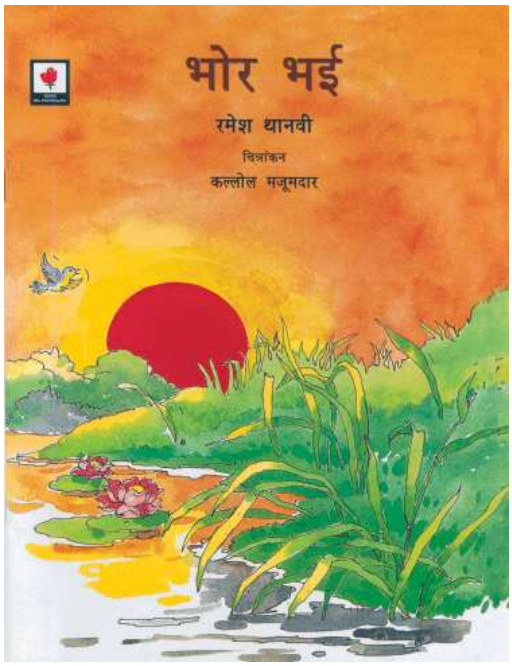

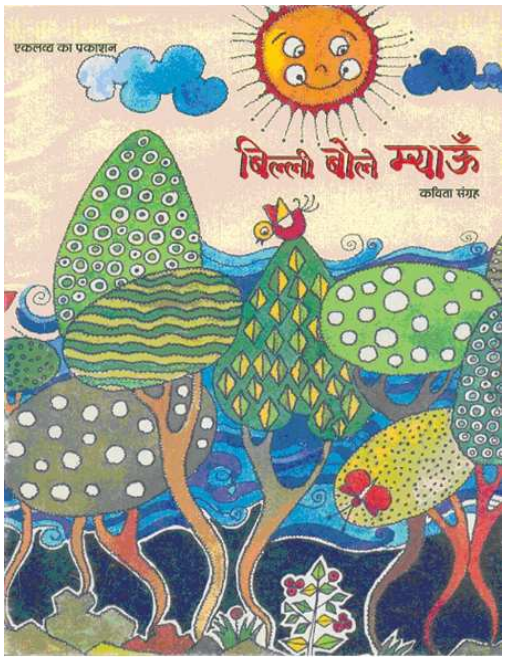

के शब्दों की भरमार है। इस बाल साहित्य में – **'महके सारी गली गली', 'भोर भई', 'अक्कड़-बक्कड़', 'बिल्ली बोले म्याऊँ'** में आँचलिक शब्दों को समुचित स्थान दिया गया है।

इससे दो लाभ हैं– एक, आँचलिक शब्द बच्चों के बेहद करीबी दोस्त हैं और दूसरा, इन शब्दों के बहाने, अपनी परंपरा, संस्कृति को जानने, उससे जुड़ने और उसे आगे बढ़ाने की प्रेरणा मिलती है। **शब्द जितने बच्चों के करीब होंगे, बच्चे भी उतना ही किताब के करीब होंगे।** आँचलिक शब्दावली के उदाहरण इस प्रकार हैं–

'जा चकिया के तीन देवता,
कीला, मुठिया, यानी।
चकिया घूमे घानी-मानी
चकिया घूमे घानी-मानी' **(चकिया - अक्कड़-बक्कड़)**

'एक दिन झटपट
गया वो पनघट।
जमघट में हो गई
उसकी सरपट।' **(खट-खट - बिल्ली बोले म्याऊँ)**

'बाँका तिरहा छेल चिकनिया
पहने अचकन और सुथनिया।' **(चला चाँद से-महके सारी गली गली)**
'भाग्य कहाँ जो, छींका टूटे या फिर फूटे, घी की मटकी।'
(घी की मटकी - महके सारी गली गली)

शब्दों की एक श्रेणी ध्वन्यात्मक शब्दों की है जो केवल ध्वनियों के माध्यम से ही पूरा चित्रमय संसार उपस्थित कर देते हैं। ये ध्वन्यात्मक शब्द विभिन्न प्रकार की क्रियाओं और उनकी गहनता को समझने में सहायता करते हैं। यह भी सत्य है कि कई अवधारणाएँ बनने में ध्वन्यात्मकता काम करती है। ध्वनि और किसी वस्तु का परस्पर संबंध या तादात्म्य जब स्थापित होता है तो वस्तु की अनुपस्थिति में केवल ध्वनि मात्र से ही वस्तु की छवि उभरने लगती है। इस प्रकार मानसिक छवियाँ बनाने में ध्वन्यात्मक शब्दों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसी प्रकार के ध्वन्यात्मक शब्दों की कुछ बानगियाँ इस प्रकार हैं -

'धम्मक धम्मक आता हाथी
धम्मक धम्मक जाता हाथी' **धम्मक-धम्मक - बिल्ली बोले म्याऊँ**
'अररररररररर पानी आया!
हररररररररर पानी आया!' **पानी आया - बिल्ली बोले म्याऊँ**
'धक्-धक्, धक्-धक्, छू-छू, छू-छू!
भक्-भक्, भक्-भक्, भू-भू, भू-भू!
छक्-छक्, छक्-छक्, छू-छू, छू-छू!' **मेरी रेल - महके सारी गली गली**
'करती आई रेल!
हिक्-हिक्, आच्-छी!' **हाथी की हिचकी**

शब्दों की ध्वन्यात्मकता के अतिरिक्त इस बाल साहित्य का एक और मज़बूत पक्ष है। वह है - शब्दों, वाक्यांशों, वाक्यों की संदर्भगत सटीक पुनरावृत्ति, भाषायी पुनरावृत्ति से अर्थ का पुष्टिकरण तो होता ही है, साथ ही शब्दगत, वाक्यगत स्थायित्व भी आता है। शब्दों, वाक्यों की पुनरावृत्ति एक प्रकार का लयात्मक वातावरण भी पैदा करती है। पुनरावृत्ति का बच्चों के भाषिक विकास पर एक सकारात्मक प्रभाव यह पड़ता है कि वे शब्दों के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए उन पर अपनी पकड़ को मज़बूत बनाते हैं। भाषायी पुनरावृत्ति अवधारणाओं को भी पुष्ट करती है और भाषायी विकास को भी। बच्चे उनमें से अपने लिए अर्थपरक नियम ढूँढ़ ही लेते हैं। फिर उन नियमों के आधार पर भाषा का सृजनपरक इस्तेमाल करते हैं। भाषायी पुनरावृत्ति के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

- ''मैं घूमने जा रहा हूँ'', बत्तख का बच्चा बोला।

''मैं भी चलूँगा'', चूज़ा बोला।
''मैं गड्ढा खोद रहा हूँ'', बत्तख का बच्चा बोला।

''मैं भी खोदूँगा'', चूजा बोला। **(मैं भी .....)**

- शेर जाग गया/ज़ेबरा जाग गया/चूहा जाग गया। **(हाथी की हिचकी)**
- उसने पानी पिया/और पिया/और पिया/और पिया **(हाथी की हिचकी)**

बाल-मन को प्रिय 'खेल' बाल साहित्य की एक मुख्य विषय-वस्तु के रूप में प्रतिस्थापित है। बच्चों के संदर्भ में 'खेल' की संकल्पना कई रूपों में उभरती है। उनमें से प्रमुख दो संरचनाएँ हैं - **खेल-खेलना** (गिल्ली-डंडा, छुपन-छुपाई, आँख-मिचौनी आदि) और **शब्दों से खेलना**। दरअसल बच्चों को ये दोनों खेल ही बेहद पसंद हैं। खेल की दोनों संकल्पनाएँ अध्ययन में शामिल बाल साहित्य में पूरे दम-खम के साथ मौजूद हैं। एकलव्य द्वारा प्रकाशित **'अक्कड़-बक्कड़'** शीर्षक काव्य संग्रह की ज़्यादातर रचनाएँ वास्तव में खेल गीत ही हैं जिन्हें बच्चे खेलते हुए गाते हैं -

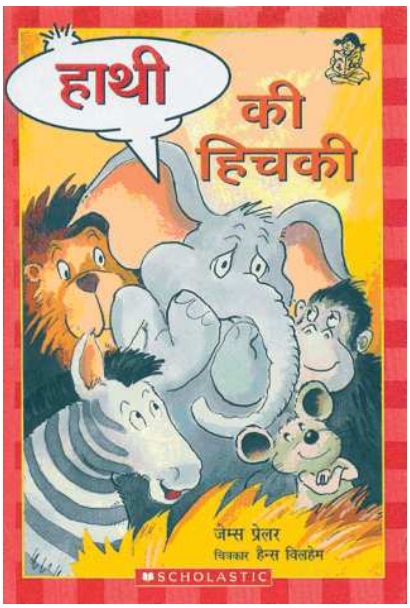

'अक्कड़-बक्कड़, बम्बे बो
अस्सी नब्बे, पूरे सौ
सौ में लगा धागा,
चोर निकलकर भागा।'
(अक्कड़-बक्कड़)

'पोशम्पा भई पोशम्पा,
डाकुओं ने क्या किया
सौ रुपए की घड़ी चुराई,
अब तो जेल जाना पड़ेगा,
जेल की रोटी खानी पड़ेगी।'
(पोशम्पा-अक्कड़-बक्कड़)

खेल की दूसरी संकल्पना में **शब्दों से खेलना** शामिल है। शब्दों से खेलना दरअसल भाषा का सृजनात्मक प्रयोग है। बच्चे अपने भाव, विचार, लय, ताल के अनुसार शब्दों को तोड़-मरोड़ कर इस्तेमाल करते हैं। इस संदर्भ में प्रो. कृष्ण कुमार का मानना है कि 'अधिकांश बच्चों के लिए शब्द ढाई साल की उम्र से खेल और आनंद का एक प्रमुख साधन बन जाते हैं। अलग-अलग स्वर में दोहराकर, नए रूपों और मौलिक संदर्भों में रखकर बच्चे शब्दों से खेलते हैं और संतुष्ट होते हैं –

'दूध जलेबी जग्गग्गा,
पर इसमें है मग्गग्गा।
मैं चम्मच में बाल्टी रखूँगा,
उससे कुएँ का दूध निकालूँगा।'

अनुपयुक्त जगह पर शब्द का प्रयोग करना उन्हें भाता है। उन्हें ऐसी कविताएँ जल्दी से याद हो जाती हैं, जिनमें इसी तरह शब्दों की खींच-तान की गई हो। आशय यह है कि छोटे बच्चे शब्दों को खिलौनों की तरह इस्तेमाल करते हैं। बच्चों के खेलगीत भाषा के बेहद रचनात्मक और ताकतवर इस्तेमाल के निराले स्रोत हैं और वे भाषा के कई बुनियादी कौशल सिखाने के बहुत उपयोगी साधन हैं।

बाल साहित्य की एक कसौटी है कि उसकी विषय-वस्तु में वैविध्य होता है। यहाँ एक सवाल यह उठता है कि बाल साहित्य की विषय-वस्तु में क्या-क्या होना चाहिए। चूँकि यह बच्चों का साहित्य है तो ज़ाहिर-सी बात है कि विषय-वस्तु भी उन्हीं की दुनिया की होगी। तो दूसरा सवाल आता है – उनकी दुनिया में क्या-क्या है? तीन से छह साल तक के बच्चों की दुनिया में शामिल हैं – तरह-तरह के खेल, पशु, पक्षी, संगीत, प्राकृतिक उपादान सूरज, चाँद, तारे, बादल, बारिश की छमाछम गिरती बूँदें, उनका परिवार, माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी, नाना-नानी, चाट-पकौड़ी, मिठाई, दाता, मिट्टी, कँकड़, खिलौने, दूध-मलाई आदि।

इस बाल साहित्य में बच्चों की दुनिया से जुड़े ये सभी विषय शामिल हैं। चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित **'शोभना'** शीर्षक कहानी में गाय, उसका बछड़ा, यातायात के साधनों का ज़िक्र है तो **'अशोक की हरी पतंग'** में 'पतंगबाजी' का खेल। **'आओ गिनें बादल'** में मस्ती मारते छोटे-बड़े, आँके-बाँके बादल और उनके करतब।

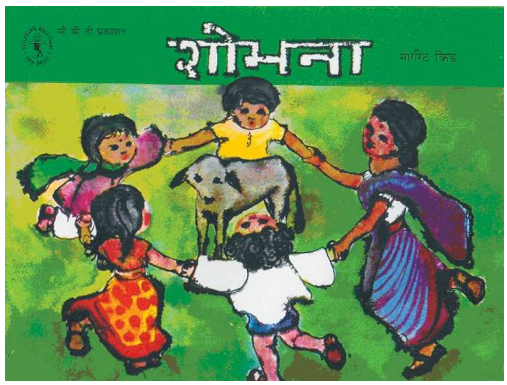

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्रकाशित **'बरखा'** पुस्तक माला की **'मीठे-मीठे गुलगुले'** और **'शरबत'** में खाने-पीने की चीज़ों का ज़िक्र है तो **'गिल्ली-डंडा'** में बच्चों का पसंदीदा खेल लिया गया है, इसी पुस्तकमाला की कहानी **'पत्तल'** में बच्चे पत्तों से पत्तल बनाते हैं और पत्तल में खाना परोसते हैं। तो **'मेरे जैसी'** में शरीर के अंगों की बात आई है।

नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित **'तीन मछलियाँ'** शीर्षक कहानी में जलीय जीव जंतु और मछुआरों के बहाने हमारे कामगारों की चर्चा है तो **'पशु-पक्षी का नाम बताएँ'** में पूरा पशु-पक्षी जगत साकार हो जाता है। यही पशु-पक्षी जगत 'आम की कहानी' में भी नज़र आता है जब बच्चे आम को हासिल करने के लिए अलग-अलग जीव-जंतुओं के दर्शन करते हैं। **'लाल पतंग और लालू'** में पतंगबाजी, गाय-भैंसों को चराने के माध्यम से ग्रामीण परिवेश झलकता है तो **'भोर भई'** में भोर होने पर क्या-क्या होता है। उसकी एक पूरी दिनचर्या दिखायी गई है। इसमें भी ग्रामीण परिवेश को स्थान दिया गया है। **'कितनी प्यारी है यह दुनिया'** में तो बच्चों का पूरा संसार एक ही जगह सिमट आता है। उसमें हवा, चिड़ियाँ, जानवर, मछलियाँ, समुद्र, माता-पिता, भाई-बहन, कपड़े, खिलौने, किताबें, फूल-पौधे आदि की भी बहुत खूबसूरत प्रस्तुति है।

'महके सारी गली-गली', **'अक्कड़ - बक्कड़'** और **'बिल्ली बोले म्याऊँ'** में संग्रहित कविताओं में भी विषयगत वैविध्य देखने को मिलता है। इतना ही नहीं विज्ञान से जुड़ी अवधारणाओं को स्पष्ट करने संबंधी रचनाएँ भी मौजूद हैं -

'एक समय थे तीन कुम्हार,
बड़े चतुर बहुत होशियार।
नाव बनाकर एक मिट्टी की,
वे चले समुंदर पार।
पानी में जो नाव न घुलती
बात हमारी आगे चलती।'

(कुम्हार - बिल्ली बोले म्याऊँ)

जहाँ तक सामाजिक मूल्यों का सवाल है यह बाल साहित्य सीधे-सीधे उपदेश देने की

प्रवृत्ति से बचा हुआ है। हाँ, यह अलग बात है कि मूल्य कहानी के ताने-बाने में इस तरह गुँथे हुए हों कि वे कहानी के साथ-साथ स्वयं ही, अनायास तरीके से संप्रेषित हो जाएँ, लेकिन रचनाओं का गहन विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि कोरी उपदेशात्मकता, नैतिक मूल्यों से पोषित रचनाओं को जगह देना इस बाल साहित्य का उद्देश्य नहीं है। स्वतः प्रेषित होने वाले मूल्यों की एक बानगी इस प्रकार है - चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित **'शोभना'** शीर्षक कहानी में यातायात के नियमों का, सड़क पार करने के नियमों का पालन करना जैसे मूल्य दिए गए हैं।

'कितनी प्यारी है यह दुनिया' पशु-पक्षी, पेड़-पौधों के प्रति प्रेम का भाव तो प्रकट करती ही है साथ ही छोटे भाई-बहनों के प्रति भी स्नेह भाव को पोषित करती है। **'तीन मछलियाँ'** शीर्षक कहानी अनायास ही अनेक मूल्यों को संप्रेषित करती है - बड़ी मछली के माध्यम से वह आलस को त्यागने, बीच की और दूसरी मछली के माध्यम से जल्दबाज़ी में काम न करने तथा सबसे छोटी मछली के माध्यम से चुस्ती, फुर्ती, कर्मण्यता, होशियारी सोच-विचारकर काम करने जैसे मूल्यों की चर्चा करती है। इसके अतिरिक्त **'आम की कहानी'** शीर्षक पुस्तक में इस बात को अप्रत्यक्ष रूप से उभारा गया है कि गुलेल का इस्तेमाल पक्षियों को मारने, उन्हें नुकसान पहुँचाने के लिए न करें। **'भोर भई'** में एक व्यवस्थित दिनचर्या में बँधा अनुशासन, स्वच्छता जैसे मूल्य पोषित होते हैं। **'मैं भी...'** शीर्षक कहानी में दूसरों की नासमझी वाला अनुकरण नहीं करना चाहिए जैसे महत्वपूर्ण मूल्य को उभारा गया है। **'हाथी की हिचकी'** शीर्षक कहानी में एक-दूसरे का सहयोग, अहिंसा, शांति, परस्पर भाईचारा, मैत्री, सद्भाव जैसे मूल्य बेहद सुंदर अंदाज में प्रस्तुत किए गए हैं। इसी कहानी **'हाथी की हिचकी'** में केवल दो दृश्य ही इतने सक्षम हैं कि वे पूर्वोक्त समस्त मूल्यों को प्रदर्शित कर सकें। दोनों दृश्यों में शेर, चूहा, ज़ेबरा, सभी मिलजुल कर एक-दूसरे का सहारा लेकर सो रहे हैं। पहले दृश्य में चूहा शेर की पूँछ ओढ़ावन बनाकर बेफ़िक्री से 'मुँह खोलकर' सोता है तो दूसरे दृश्य में यह बेफिक्री और भी नज़र आती है जब चूहा शेर के पैरों और ज़ेबरा शेर की पीठ का सहारा लेकर चैन से सोते हैं। इन दो चित्रों पर बातचीत की जाए तो मूल्यों की दृष्टि से यह कहानी बहुत मूल्यवान सिद्ध हो सकती है।

'लाल पतंग और लालू' शीर्षक कहानी में मानव और पशुओं की समान स्तरीय संवेदना जैसा मूल्य उभरकर आता है। लालू बार-बार पतंग को पकड़ने का प्रयास करता है, लेकिन असफल हो जाता है। उसकी इस संवदेना का सहभागी बनते हुए राजा अपनी ओर से पतंग को पकड़ने का पूरा प्रयास करता है।

जब पतंग नज़दीक आने लगती है तो राजा अपने पैर से उसे चेताने का प्रयास करता है। यह दृश्य भी अत्यंत मार्मिक है। कहानी की दोनों घटनाएँ तदनुभूति, सहायता करना, कोशिश करना, कर्मण्यता आदि मूल्यों को पुष्ट करती है।

बाल साहित्य पर गौर करें तो पहले शब्द तो उसी माटी के बने होने चाहिए जिस माटी के बच्चे खुद हों। फिर हाथ बढ़ाकर बच्चे के ही दिमाग में से मुट्ठीभर शब्द निकाल लीजिए और उनका ही पहले-पहल इस्तेमाल कीजिए। फिर चाहे ये शब्द अच्छे हों या बुरे, उग्र हों या शांत, रंगीन हों या फ़ीके, ताकि प्रारंभ टूटन से न हो, कटाव से न हो।

बच्चों की इन विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए बाल साहित्य लेखन की दिशा में अभी काफ़ी कुछ किया जाना शेष है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए। बड़ी किताबों की ज़रूरत उस समय और भी ज़्यादा महसूस की जाती है जब बच्चों को कोई कहानी सुनानी हो। बड़ी किताब की कहानी में आए चित्रों और उन चित्रों में समाए कहानी के पात्रों, कहानी की घटनाओं से आत्मीय रिश्ता बनाने में मदद सहायक होती है। कोशिश की जाए कि किताबों का आकार इतना हो कि सभी बच्चे एक गोल घेरे में बैठकर चित्रों को भरपूर देख सकें, उन पर चर्चा कर सकें।

बाल साहित्य का बहुसंवेदी होना उसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता हो सकती है। जिससे समावेशी शिक्षा की संकल्पना को साकार किया जा सकेगा। साथ ही बच्चों की चिंतन शक्ति का भी विकास संभव हो सकेगा। यह सत्य ही है कि बाल-काव्य में जो मज़ा है वह हमारे बड़ों की 'मतलबी' दुनिया में नहीं है। अपने अतार्किक और असंतुलित रूप में भी वे हमें प्रिय लगते हैं और हमारे भाव-जगत में गुदगुदी करते हैं। दरअसल हर चीज़ में मतलब ढूँढ़ना, हर चीज़ के मायने तलाश करना हम बड़ों की ही आदत है, बच्चे इससे परे रहते हैं। उनकी अपनी एक अलग दुनिया होती है। एक ऐसी दुनिया जहाँ मतलब बेमतलब हो जाता और बेमतलब भी आनंद की सृष्टि करता है।

इस पूरी चर्चा से बच्चों और बच्चों के साहित्य के बारे में यह समझ बनती है कि **बच्चे बाल साहित्य के रूप में चित्रात्मक और रंगीन पुस्तकों को बेहद पसंद करते हैं। उनकी पसंद के दायरे में पशु-पक्षी, हवा, बादल, पेड़-पौधे, नदी, पहाड़, चाँद, बच्चे आदि सभी कुछ शामिल हैं।** यह बाल साहित्य न केवल तरह-तरह की अवधारणाएँ बनने-बनाने, उन्हें सवंर्द्धित करने में मदद करता है, बल्कि आपसी संवाद के माध्यम से भाषा और मूल्य-विकास को भी पोषित करता है। यह भी समझ बनती है कि बच्चे लयात्मक पाठ्य-वस्तु के प्रति रुचि प्रदर्शित करते हैं। फिर वह चाहे गीतात्मक कहानी हो या तुक, ताल, लय में बँधी कविता। इनमें शब्दों, वाक्यों की लयात्मक और बँधी-बँधायी निश्चित अंतराल की पुनरावृत्ति और भी आकर्षण पैदा करती है। बाल साहित्य हमें वह अवसर देता है कि हम बच्चों के कल्पना संसार में झाँक सकें।

उनके कल्पना संसार में झाँकने भर की देर है– आप स्वयं को रोमांचित महसूस करेंगे क्योंकि बाल मन वयस्क मन की तरह चीज़ों, घटनाओं में हमेशा तर्क, तथ्य और वस्तुनिष्ठता की खोज नहीं करता है। वह तो केवल कल्पना की उड़ान भरना चाहता है– बिना परों के! यही बच्चों की दुनिया है। बच्चों को समझने के लिए उनकी इसी दुनिया का हिस्सा बनना होगा!

❑❑❑

संदर्भ

- कुमार, कृष्ण, 2008, *दीवार का इस्तेमाल और अन्य लेख*, एकलव्य, ई-10, बी.डी.ए. कॉलोनी, शंकर नगर, शिवाजी नगर, भोपाल, मध्यप्रदेश
- पंडित, सुरेश, 2005, हिंदी में बाल साहित्य: वस्तु स्थिति और संभावनाएँ, *शिक्षा-विमर्श,* दिगंतर, टोडी रमजानीपुरा, जगतपुरा, जयपुर
- पराशर, पंकज, 2005, बाल साहित्य : खुद के बहाने एक बहस, *शिक्षा-विमर्श*, दिगंतर, टोडी रमजानीपुरा, जगतपुरा, जयपुर
- पांडे, लता (संपादक), 2008, *पढ़ने की दहलीज पर : पढ़ने से संबंधित लेखों का संकलन*, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली।
- प्रसाद, देवी, 2005, *शिक्षा का वाहन कला*, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नयी दिल्ली।
- मालवीय, मुकेश (अंक 51) तुकबंदियों का कमाल शिक्षण में धमाल, *शैक्षणिक संदर्भ*, एकलव्य, चक्कर रोड मालाखेड़ी, होशंगाबाद